अमीर खुसरो
सातवें शताब्दी समारोह

अमीर खुसरो—एक काल्पनिक रेखाचित्र

आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व दिल्ली नगर में एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति रहा करते थे, जिनका नाम था अमीर खुसरो। वह कवि, गद्य लेखक, हास्यकार, इतिहासकार, सिपाही, दरबारी, सूफी, संगीतज्ञ तो थे ही, और भी बहुत कुछ थे। वह एक महान मानवतावादी थे और विदेशी वंश परंपरा के होते हुए भी हर भारतीय वस्तु से उन्हें बेहद लगाव था। वास्तव में उन्हें अपने भारतीय होने पर गर्व था।

उनकी प्रमुख विशेषता थी उनके जीवन का रंगबिरंगापन। संसार की कोई भी वस्तु, उनके लिए न तो उपेक्षित थी, न ही बहुत महान। उनके सजीव व्यक्तित्व के निर्माण में शाही दरबार की सजधज और वैभव, बाजार की तड़कभड़क, खानक़ाह का शांत वातावरण और युद्ध क्षेत्र में हथियारों की झनझनाहट, सभी कुछ शामिल था। उनकी प्रतिभा के विकास में शाही दरबार और दूरस्थ गांव खानक़ाह और बाजार, सभी का महत्त्वपूर्ण योगदान था। यही कारण है कि हम उन्हें हर जगह पाते हैं--क्या बादशाह, क्या जन-सामान्य, क्या सूफी और सैनिक, क्या कवि, विद्वान और संगीतज्ञ--उन्होंने जीवन के हर स्वरूप से लाभान्वित होने का प्रयत्न किया और बड़े ही लुभावने ढंग और मुक्तभाव से दूसरों को लाभान्वित होने का अवसर दिया।

अपने 72 वर्षीय रंगबिरंगे जीवन में उन्होंने देश के अनेक दूरस्थ क्षेत्रों का भ्रमण किया और वहां की वनस्पतियों, जीव-जंतुओं, भाषाओं और रीति-रिवाजों का बहुत निकट से अध्ययन किया। तत्कालीन राज्य सीमाओं, दिल्ली से देवगिरि और मुल्तान से लखनौती तक वह खूब घूमे और जीवन को उसके हजार रंगों में देखा। उन्होंने बड़े-बड़े राजवंशों के उतार-चढ़ाव और सात बादशाहों के

शासन-काल देखे। सच तो यह है कि उनके अनुभव बड़े महान थे, पर जो कुछ उन्होंने विश्व को दिया, वह उससे भी महान है। उनकी राग-रागिनियां, उनकी पहेलियां, उनकी कविताएं और उनके श्लिष्ट प्रयोग, शताब्दियों से लाखों व्यक्तियों को आनंदित कर रहे हैं और आज भी उनकी फारसी गजलें, केवल दिल्ली, लखनऊ और हैदराबाद में ही नहीं, बल्कि लाहौर, तेहरान और ताशकंद में भी गायी जाती हैं।

खुसरो जिस दिल्ली में रहे और जो उन्हें बहुत ही प्रिय थी, वास्तव में एक अद्भुत नगरी थी। तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक एशिया में उसने एक अनूठा स्थान प्राप्त कर लिया था। सच तो यह है कि उस समय सम्पूर्ण जगत में उस जैसा कोई दूसरा नगर था ही नहीं। पूर्व के सभी बड़े-बड़े सांस्कृतिक केंद्र——बगदाद, बोखारा, समरकंद, हिरात और बल्ख——सब के सब शक्तिशाली मंगोलों के हाथों तबाह हो चुके थे। जब तब सिराय और कराकोरम की पहाड़ियों से इन खानाबदोश घुड़सवारों का एक भयावह गिरोह उठता, आँधी-तूफान की तरह संपूर्ण मध्य एशिया पर छा जाता और अपने पीछे नाश-विनाश की एक गाथा छोड़ जाता। केवल दिल्ली ही इनसे सुरक्षित रही और बहुत जल्द ही कला और विद्या की केंद्रस्थली बन गयी। शरण और आजीविका पाने की आशा लिए न जाने कितने ही विद्वान, सैनिक, कवि और राजकुमार पूर्वी जगत से दिल्ली की ओर गिरोह-दर-गिरोह चल पड़े और इस प्रकार यह नगरी सार्वभौम विशिष्टता का केंद्र बन गयी।

अमीर खुसरो के पिता अमीर सैफुद्दीन महमूद, ऐसे ही एक प्रवासी थे। वह तुर्की के लाचीन कबीले के सरदार थे और भारत में उस समय आये जब यहाँ अल्तमश राज्य कर रहा था। सचमुच वह बड़े ही प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति रहे होंगे क्योंकि उनके आगमन के तुरंत बाद ही बादशाह ने उन्हें अपनी विशेष मंडली में सम्मिलित कर लिया और उन्हें सेना में एक महत्त्वपूर्ण पद भी प्रदान किया। अमीर खुसरो की माता भी एक अति प्रतिष्ठित वंश से संबंध रखती थीं। वह गयासुद्दीन बलबन के प्रसिद्ध प्रतिरक्षा मंत्री इमादुलमुल्क की सुपुत्री थीं। ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि के होते हुए अमीर खुसरो को सरदारों और बादशाहों की संगति क्यों न प्राप्त होती। दरअसल

दिल्ली के शासकों से उनका इतना निकट का संबंध था कि उनका जीवन-वृत्तान्त बताने का अर्थ है नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु से लेकर मुहम्मद-बिन-तुगलक के राज्यारोहण तक के भारत के इतिहास का सर्वेक्षण।

अबुल हसन यामीनुद्दीन खुसरो, जो आगे चल कर अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध हुए, 1253 ई. में पटियाली में पैदा हुए थे। पटियाली जिला एटा (उत्तर प्रदेश) में गंगा नदी के किनारे स्थित एक छोटा-सा गाँव है, जो उस समय उनके पिता की जागीर का एक हिस्सा रहा होगा। लेकिन खुसरो वहां अधिक दिन नहीं रह सके। अभी खुसरो केवल आठ वर्ष के ही थे कि उनके पिता चल बसे और वह अपने नाना के पास दिल्ली चले आये। नम्र और उदार-हृदय नाना ने खुसरो को अपनी देख-रेख में बड़े स्नेह के साथ पाला-पोसा। उन्होंने खुसरो के लिए श्रेष्ठतम शिक्षा की व्यवस्था की और ऐसा अनुकूल वातावरण जुटाया जिससे उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास हो सके। यही वह जमाना था जब खुसरो अपने समय के बहुत से बुद्धिजीवियों और शासकों के संपर्क में आये और उन्होंने उनके सर्वोत्तम गुणों को आत्मसात् किया।

नासिरुद्दीन महमूद

खुसरो में लड़कपन से ही काव्य-रचना की प्रवृत्ति थी। किशोरावस्था में ही उन्होंने फारसी के महान कवियों का अध्ययन शुरू कर दिया था और उनमें से कुछ के अनुकरण में काव्य रचने का प्रयास भी किया था। अभी वह 20 वर्ष के भी नहीं हुए थे कि उन्होंने अपना पहला दीवान (काव्य संग्रह) **तुहफतुस्सिर** पूर्ण कर लिया। बावजूद इसके कि उन्होंने कुछ फारसी कवियों की शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न किया था, उनकी इन कविताओं में भी एक विशेष प्रकार की नवीनता और नूतनता थी और इस पर उनकी अभिनव प्रतिभा की स्पष्ट छाप है। उस समय खुसरो केवल एक होनहार कवि के रूप में ही नहीं उभरे थे, बल्कि उन्होंने संगीत सहित उन तमाम विद्याओं का ज्ञान भी भलीभाँति प्राप्त कर लिया था जो उस समय के किसी भी सुसभ्य व्यक्ति के लिए अनिवार्य था। वह एक प्रखर, संवेदनशील, हाजिरजवाब और जीवन्त व्यक्ति थे। इसी कारण बहुत जल्दी ही, राजधानी में हर व्यक्ति के वे प्रेमपात्र बन गए। हर व्यक्ति को उनकी रोचक और आनन्दमय संगति प्रिय थी और एक-एक करके कितने ही सरदारों और बादशाहों ने बहुत ही उदारतापूर्वक पूरे जीवन उनका संरक्षण किया। जनसामान्य में भी वे बहुत प्रिय थे।

ऐसे समय में, जबकि खुसरो को इतनी अधिक लोकप्रियता मिल रही थी, उनके नाना के देहावसान से उन्हें जीवन का एक प्रचंड आघात पहुँचा। अब उन्हें रोजगार खोजने पर विवश होना पड़ा। शीघ्र ही उन्हें एक स्नेही और उदारचेता संरक्षक प्राप्त हो गया। अलाउद्दीन मुहम्मद कशली खाँ, जो प्रायः मलिक छज्जू के नाम से जाना जाता था, बलबन का भतीजा था और अपनी उदारता और वीरता के लिए विख्यात था। इतना विख्यात कि प्रसिद्ध और शक्ति-सम्पन्न मंगोल हलाकू ने उसे आधे ईराक की गवर्नरी का प्रस्ताव दिया था और उसकी स्वीकृति चाही थी। खुसरो ने उसे एक आदर्श व्यक्ति पाया और दो वर्ष तक वह उसके यश-गान में लगे रहे। मलिक छज्जू भी उनसे बड़ी कृपा और प्रेम का व्यवहार करता था पर एक दिन एक आकस्मिक घटना से इन दोनों के बीच कुछ भ्रम पैदा हो गया और विवश होकर खुसरो को मलिक छज्जू की नौकरी छोड़नी पड़ी।

इसके तुरंत बाद उन्होंने राजकुमार बुगरा खाँ की नौकरी कर ली। बुगरा खाँ, बलबन का दूसरा बेटा था और उस समय समाना का गवर्नर था। जब लखनौती (बंगाल) में तुगरिल ने विद्रोह किया, बुगरा खाँ को उसके पिता ने तलब किया और विद्रोह को कुचलने का आदेश दिया। खुसरो न केवल राजकुमार के साथ लखनौती गये, बल्कि उन्होंने इस लड़ाई की सफलता का उत्सव मनाने के उद्देश्य से प्रसिद्ध 'फतहनामा' का मस्विदा भी तैयार किया। हालांकि एक राजनीतिक दस्तावेज तैयार करने के संबंध में यह खुसरो का पहला प्रयास था, फिर भी उन्होंने राजकुमार की आशाएं पूरी कीं और उनके प्रयत्नों को बड़े स्तर पर सराहा गया। किंतु बंगाल की आर्द्र जलवायु खुसरो के लिए अनुकूल न थी और उन्हें शीघ्र ही दिल्ली वापस आना पड़ा।

दिल्ली वापस आने के बाद, उनकी भेंट बलबन के बड़े बेटे राजकुमार मुहम्मद से हुई, जो प्रति वर्ष मुलतान से अपार उपहार और भेंट लेकर अपने पिता की सेवा में उपस्थित हुआ करता था। राजकुमार

बलबन

मुहम्मद अपने समय का अति सुसभ्य और प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति था और कवियों तथा विद्वानों का महान संरक्षक भी। उसने प्रसिद्ध फारसी कवि सादी को अपने दरबार में आने के लिए आमंत्रित किया था। पर सादी ने अपने बुढ़ापे के कारण आने में विवशता प्रकट की और अपने बजाय खुसरो की सिफारिश की। यह सिफारिश खुसरो की महान योग्यता और व्यापक लोकप्रियता का स्वतः प्रमाण है। राजकुमार मुहम्मद ने खुसरो को तुरंत पसंद कर लिया और उनसे मुलतान चलने को कहा। खुसरो पाँच वर्ष मुलतान में रहे और उन्हीं के शब्दों में, "मुलतान की पाँच नदियों को अपने सुखद पदों के समुद्र से भर दिया।" पर मंगोलों के साथ हुई छोटी-सी मुठभेड़ में राजकुमार मुहम्मद की अचानक दुःखद मृत्यु के साथ ही मुलतान में खुसरो के सुखपूर्ण निवास का अन्त हो गया। मंगोलों ने खुसरो को भी पकड़कर बंदी बना लिया। पर वह किसी न किसी प्रकार भाग निकलने में सफल हो गये। राजकुमार मुहम्मद की मृत्यु से खुसरो अपने एक स्नेही संरक्षक से महरूम हो गये, जो उनकी प्रतिभा से भलीभाँति परिचित था और उसका मूल्य भी समझता था। उन्होंने राजकुमार की मृत्यु पर एक बड़ा ही मार्मिक शोकगीत लिखा, जो दिल्ली के हर गली-कूचे में पढ़ा जाता था और जो कोई भी उसे सुनता था, उसकी आँखों से अश्रु-धारा बह निकलती थी। अब उनकी ख्याति शाही महल की चारदीवारी से निकलकर जन-साधारण के कानों तक पहुँच गयी थी।

राजकुमार मुहम्मद की मृत्यु के बाद खुसरो की नौकरी में एक संक्षिप्त अंतराल रहा। फिर कुछ ही दिनों के बाद उन्होंने अमीर अली सरजानदार की नौकरी कर ली। उनका यह संरक्षक बलबन का एक प्रसिद्ध सरदार था, जो अपनी अपार दानशीलता और उदारता के कारण हातिम खाँ के नाम से विख्यात हो गया था। जब वह अवध का गवर्नर नियुक्त किया गया तो वह खुसरो को भी अपने साथ ले गया। अवध में खुसरो लगभग दो वर्ष रहे, पर इस पूरी मुद्दत में एक विरही की भाँति दिल्ली वापस पहुँचने के लिए तड़पते रहे। अन्ततः उन्होंने अपने संरक्षक की अनुमति प्राप्त कर ली और अपने प्रिय नगर दिल्ली में वापस आ गये।

यह वह समय था, जब बलबन का पोता कैकुबाद दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान था। दिल्ली आये हुए अभी दो दिन भी न बीते थे कि कैकुबाद के दरबार मे खुसरो के लिए बुलावा आ गया। वह दरबार में उपस्थित हुए और उन्होंने सुलतान की प्रशंसा में एक कसीदा प्रस्तुत किया। सुलतान ने उन्हें अपने दरबारियों में सम्मिलित कर लिया। दिल्ली के दरबार में खुसरो की यह पहली नियुक्ति थी।

कैकुबाद एक लम्पट भोगी व्यक्ति था, जिसका उद्देश्य शरीर का आनन्द प्राप्त करना ही रह गया था। उसके शासन-काल में दिल्ली भोग-विलास का अड्डा बनकर रह गयी थी। हर दीवार की छाया तले दासियाँ और नर्तकियाँ देखी जा सकती थीं, हर कोठे पर रमणीय शरीर चमकने लगे थे। शराब और औरत ही उस समय का चलन हो गया था। कैकुबाद के पास देश के प्रशासन की देखभाल का समय ही न था और इस प्रकार वह राज्य जिसे कुतुबुद्दीन ऐबक, अल्तमश और बलबन ने अपने खून-पसीने से सुदृढ़ किया था, विनाश के किनारे पहुँच गया। अंततः

कैकुबाद

उसके पिता बुगरा खाँ, जो अब भी लखनौती के गवर्नर थे, सिंहासन पर कब्जा करने का निश्चय लेकर दिल्ली के लिए चल पड़े। बादशाह भी मुकाबले के लिए बाहर निकला। लेकिन बाप और बेटे के बीच होने वाला यह रक्तरंजित युद्ध कुछ हितैषियों के तत्काल हस्तक्षेप से टल गया और दोनों में समझौता हो गया। आनन्द और प्रसन्नता के इस शुभ अवसर पर खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी **किरनुस्सादैन** (दो शुभ सितारों का मिलन) लिखी और खूब उत्सव मनाया गया। खुसरो के लिए किसी निश्चित विषय पर लंबी मसनवी लिखने का यह पहला अवसर था और एक बार फिर वह अपने शाह को खुश करने में पूरी तरह सफल रहे। लेकिन वह बादशाह, जिसने उन्हें 'मलिकुश्शुअरा' (कविराय) की पदवी से विभूषित किया था, अब एक टूटा हुआ व्यक्ति था—कमजोर और बीमार। अब वह रोग-शय्या पर पड़ा था जबकि बाहर लड़ाई छिड़ी हुई थी।

भारत में पैदा होने वाले मुसलमान, जो खिलजियों के नेतृत्व में संगठित हो गये थे, इस बात का पूरा प्रयत्न कर रहे थे कि तुर्कों के शासन को समाप्त कर दिया जाए। एक रक्तरंजित युद्ध के बाद जलालुद्दीन खिलजी का गिरोह विजयी हुआ। जलालुद्दीन ने अपने आप को दिल्ली का बादशाह घोषित किया। कैकुबाद मारा गया और इस प्रकार गुलाम वंश का शासन समाप्त हुआ।

जलालुद्दीन खिलजी भी खुसरो के प्रति कृपादृष्टि और उदारभाव रखता था। उसने खुसरो को **मुसहफदार** (प्रमुख लाइब्रेरियन और कुरान की शाही प्रति की देखभाल करने वाला) के पद पर नियुक्त किया। उसने उन्हें अपने **नदीमों** में भी शामिल कर लिया और उनकी पेन्शन 1200 टन्का वार्षिक मुकर्रर कर दी। जब जलालुद्दीन गद्दी पर बैठा, तो उसकी आयु सत्तर से कुछ ऊपर हो थी, पर जीवन में उसकी रुचियाँ पहले ही जैसी थीं। खुसरो हर रात उसकी महफिल में एक नई गज़ल प्रस्तुत करते और "जब साक़ी जाम भर देता, सुन्दर किशोरी ललनायें नृत्य करने लगतीं, तो अमीर खुसरो की गज़लें स्वर-लहरियों पर उच्चरित हो उठतीं। उन सभाओं में, जिनकी इस धरती पर होने की कल्पना भी नहीं की

जा सकती, निष्प्राण वस्तुएं भी प्राणवान बन जाती और दुःखी मन भी खिल उठते।" यह कथन खुसरो के समकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी का है। खुसरो सुलतान का सान्निध्य प्राप्त करते गये, यहाँ तक कि उसके अति विश्वसनीय **नदीमों** में उनकी गणना होने लगी। जब खुसरो के भूतपूर्व संरक्षक मलिक छज्जू ने, जो बचे हुए कुछ तुर्क सरदारों में से एक था, बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया, तो स्वयं जलालुद्दीन खिलजी उस विद्रोह को कुचलने के लिए कड़ा की ओर गया। खुसरो भी इस मुहिम में बादशाह के साथ थे और उन्होंने अपने भूतपूर्व संरक्षक को हथकड़ियों व बेड़ियों में खींचकर लाये जाने का दर्दनाक दृश्य भी देखा। जब उन्होंने **मिफ्ताउल फ़ुतूह** की रचना की, जिसमें जलालुद्दीन खिलजी के शासन-काल की उपलब्धियों का उल्लेख किया गया है, तो उसमें उन्होंने मलिक छज्जू के विद्रोह की भी चर्चा की है, लेकिन वे उसे केवल **बद-अहद्** (वायदों को तोड़ने वाला) की उपाधि देकर ही चुप हो गये हैं।

जलालुद्दीन खिलजी

अलाउद्दीन खिलजी

यह समय कुचक्रों, षड्यंत्रों, विष देने और हत्या करवाने का समय था और सत्ता की तीव्र अदला-बदली के दौरान हर एक को अत्यधिक सावधान रहने की जरूरत पड़ती थी। खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी में एक महान व्यक्तित्व पाया और उसकी प्रशस्ति में अद्वितीय काव्य रचना की। उन्होंने ऐसे गीत गाये जो कभी नहीं गाये गये थे। यह युग उनके जीवन का सबसे अधिक रचनाप्रधान युग था। उन्होंने अपनी पाँच प्रेमाख्यानक मसनवियां—**आइना-ए-सिकन्दरी, मतला-उल-अनवार, शीरी-खुसरो, मजनूं लैला** और **हश्त-बहिश्त** तथा दो गद्य पुस्तकें—**खजाइनुल फुतूह** और **एजाजे-खुसरवी** इसी युग में लिखी हैं।

यद्यपि प्रेमाख्यानक मसनवियों में सुलतान की प्रशंसा में **कसीदे** भी मौजूद हैं, पर **खजाइनुल फुतूह** में मुख्य रूप से बादशाह की सफलताओं की चर्चा की गयी है। उस युग की एक दूसरी रचना, जिसका ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्त्व है और जिसमें खिज्र खां और देवल देवी के प्रेम-संबंधों को काव्य रूप दिया गया है, **आशिका** है। खिज्र खां अलाउद्दीन

खिलजी का सबसे बड़ा लड़का था, जो सामान्य परिस्थितियों में उसका उत्तराधिकारी भी बनता, लेकिन दुष्ट मलिक काफ़ूर ने, जो स्वयं गद्दी की ओर ललचायी हुई नजरों से देख रहा था, उसे अंधा कराके ग्वालियर के किले में कैद कर दिया। जब अलाउद्दीन खिलजी का दूसरा बेटा मुबारक शाह गद्दी पर बैठा तो उसने अपने अंधे भाई की बड़ी निर्दयता के साथ हत्या करा दी।

मुबारक खिलजी एक शक्तिहीन और अकर्मण्य व्यक्ति होते हुए भी उदार था। उसके शासन काल में दिल्ली का दरबार एक बार फिर भांड़ों, आलसियों और भोगियों का केन्द्र बन गया। फिर भी खुसरो पर उसकी बड़ी कृपा-दृष्टि थी। यह उसी का काल था कि खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी **नूहे सिपह** लिखी, जिसमें सुलतान की अपूर्व दानशीलता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गयी है। अन्ततः मुबारक खिलजी के विश्वासपात्र परवारी खुसरो खाँ ने उसकी हत्या कर दी। यह घटना खिलजी शासन के अन्त का कारण बनी। चारों ओर बर्बरता और अराजकता

मुबारक खिलजी

फैल गयी। यह स्थिति उस समय समाप्त हुई, जब तुगलक शाह (गयासुद्दीन तुगलक) ने दिल्ली में प्रवेश किया, परवारियों को परास्त किया और वह दिल्ली का बादशाह बन बैठा।

गयासुद्दीन तुगलक अमीर खुसरो का बड़ा आदर करता था। खुसरो ने उसके गद्दी पर बैठने के तुरंत बाद ही उसकी नौकरी ग्रहण कर ली। वह राजकुमार जूना (मुहम्मद बिन तुगलक) के साथ देवगिरि भी गये। कहा जाता है कि देवगिरि के सौंदर्य और उसे दक्षिणी राजधानी के रूप में विकसित करने की सम्भावनाओं की ओर उन्होंने ही तुगलक का ध्यान आकृष्ट कराया था। गयासुद्दीन के शासन-काल में अमीर खुसरो ने विख्यात **तुगलकनामा** की रचना की, जिसमें उन्होंने बादशाह और परवारियों के मध्य हुए संघर्ष का उल्लेख किया है। बाद में वह बादशाह के साथ युद्ध के लिए लखनौती (बंगाल) भी गये। लखनौती से वापसी पर बादशाह कुछ घंटों के लिए अफगानपुर में ठहर गया, जहाँ राजकुमार जूना ने उसके स्वागत के लिए लकड़ी का एक मंडप तैयार कराया था।

गयासुद्दीन तुगलक

अमीर खुसरो की मज़ार पर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं

'खमसा-ए-खुसरो' की सुप्रसिद्ध मसनवी 'मतला-उल-अनवर' के दो आकर्षक पृष्ठ

'देवल रानी खिज्र खां' की पद्यमय प्रेमगाथा का
एक सुसज्जित मुखपृष्ठ
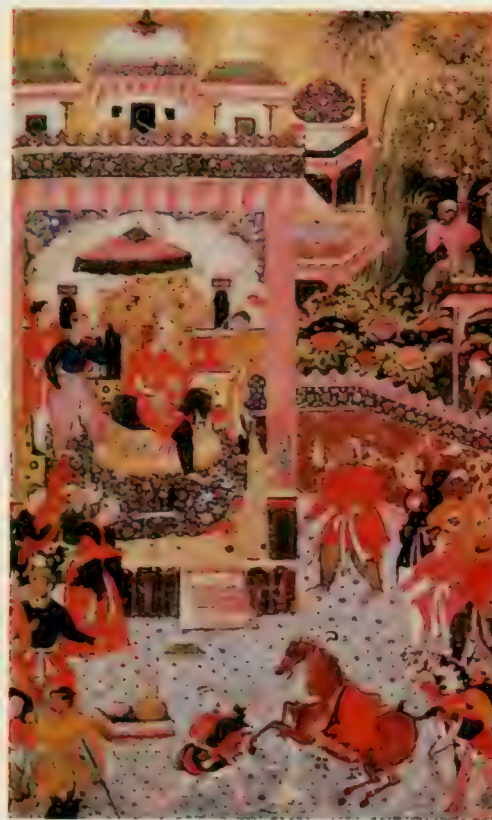
1569 ई. में तैयार मसनवी 'देवल रानी खिज्र खां' की
पाण्डुलिपि से लिया गया एक चित्र

(रंगीन चित्र : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली से साभार)

महान सन्त कवि को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए

यकायक मंडप ध्वस्त हो गया और बादशाह मलबे के नीचे दबकर मर गया। अमीर खुसरो कुछ दिनों बाद, सेना के साथ जब वापस दिल्ली पहुंचे तो उन्हें पता चला कि इस अवधि में उनके सर्वप्रिय आध्यात्मिक गुरु हजरत निजामुद्दीन औलिया का देहावसान हो गया है। यह शोक संवाद सुनकर उनके होंठों से जो शब्द आये वह यह थे: वह अनायास ही कह उठे थे:

"गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस ।
चल खुसरो घर आपने रैन भयो चहु देस ।।"

यह सदमा उनके लिए असह्य सिद्ध हुआ, यहां तक कि कुछ ही महीनों बाद वह भी चल बसे।

यह एक ऐसे कवि की कहानी है जिसे बहुत से सरक्षकों को खुश करना पड़ा और जिसका जीवन प्रशस्तियों और गुणगानों का एक अटूट सिलसिला सा जान पड़ता है। किन्तु यह तस्वीर का केवल एक रुख है। उनके जीवन का वास्तविक ध्रुवकेन्द्र दरबार नहीं, बल्कि खानकाह था—चिश्ती परंपरा के प्रसिद्ध सूफी बुजुर्ग हजरत निजामुद्दीन औलिया का खानकाह।

मध्य काल में खानकाहें बड़े महत्त्व की संस्थाएं थीं। सूफियों में सामाजिक चेतना को जाग्रत करना और जन-साधारण में, चाहे वह किसी भी धर्म के हों, आध्यात्मिक संस्कृति की संस्थापना उनका उद्देश्य था। सूफियों के निरभिमानी तरीकों, उनकी मानवीय सहानुभूतियों और खानकाह के वर्गविहीन वातावरण ने खानकाहों में उन हजारों लाखों लोगों के लिए, जो पिछड़े और दलित थे और जो शताब्दियों से वर्गभेद वाले समाज में जी रहे थे, बहुत आकर्षण भर दिया था। खानकाहों ने दिखा दिया कि समता और भाईचारे की इस्लामी धारणा, सामाजिक जीवन में एक सिद्धान्त की तरह बरती जा सकती है। इस प्रकार मध्यकालीन समाज में नैतिक सन्तुलन बनाये रखने में खानकाहों का बड़ा योगदान रहा है। चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में मानव-समता का प्रचार करने वाले भक्ति आंदोलन पर भी खानकाहों

की छाप मिलती है। इनका प्रकाश कबीर, गुरु नानक और नामदेव तक पहुँचा। खानक़ाहों की शिक्षाओं और मान्यताओं ने तत्कालीन राजनीतिक उखाड़-पछाड़, वर्ण संघर्ष और अनैतिकताओं में सुधार किया। जिस समय बाहरी जगत में शक्ति और सत्ता के लिए संघर्ष जारी होता, खानक़ाहों के भीतर सूफी-गण एकाग्रचित्त बैठे होते और ठंडे दिल से लोगों को मानव-प्रेम और समता का पाठ पढ़ाते। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ऐसे ही एक महान सूफी थे, जिनके देश भर में लाखों भक्त थे और जो बादशाहों से कहीं अधिक शक्ति––प्रेम की शक्ति––रखते थे। खुसरो ने अपने इन अति प्रिय आध्यात्मिक गुरु के बारे में लिखा था––"वह एक ऐसे शहंशाह हैं, जिनका न कोई तख्त है, न ताज, फिर भी बादशाहों को उनके पैरों की धूल की आवश्यकता है।"

इन दोनों के मध्य इतना लंबा, गहरा और सार्थक सम्बन्ध था कि हम शेख को अलग करके मात्र खुसरो के बारे में कुछ सोच भी नहीं सकते। वास्तव में खानक़ाह और दरबार उनके जीवन के दो ध्रुव थे और इन परस्पर विरोधी ध्रुवों के मध्य द्वंद्वात्मक भाव था। यह तनाव ही उनमें सृजनात्मकता और उल्लास का कारण था। कभी कभी तो यह प्रयास एक दुरूह संघर्ष में बदल जाता—ऐसा संघर्ष जो दो वफ़ादारियों और विभिन्न आचरणों के बीच था। अनेक बार ऐसा हुआ कि सत्तारूढ़ बादशाह और सूफी बुज़ुर्ग के संबंधों में कटुता पैदा हो गयी। ऐसी स्थिति खुसरो के लिए बड़ी विकट होती, पर उन्होंने कभी भी सांसारिक लाभ के लिए आध्यात्मिक लाभ का त्याग नहीं किया। इस सबसे ऊपर उठकर स्वयं और मानवीय भावना के समागम में वे हमेशा बुराई में भी भलाई देखते और क्षणभंगुर के बजाय शाश्वत मूल्यों पर जोर डालते।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया, जिन्हें राजनीति में उलझना बिलकुल पसंद नहीं था, आजीवन, अपने समय के शासकों के प्रति उदासीन रहे। कुछ अवसरों पर कतिपय शासकों ने इस रवैये में अपना
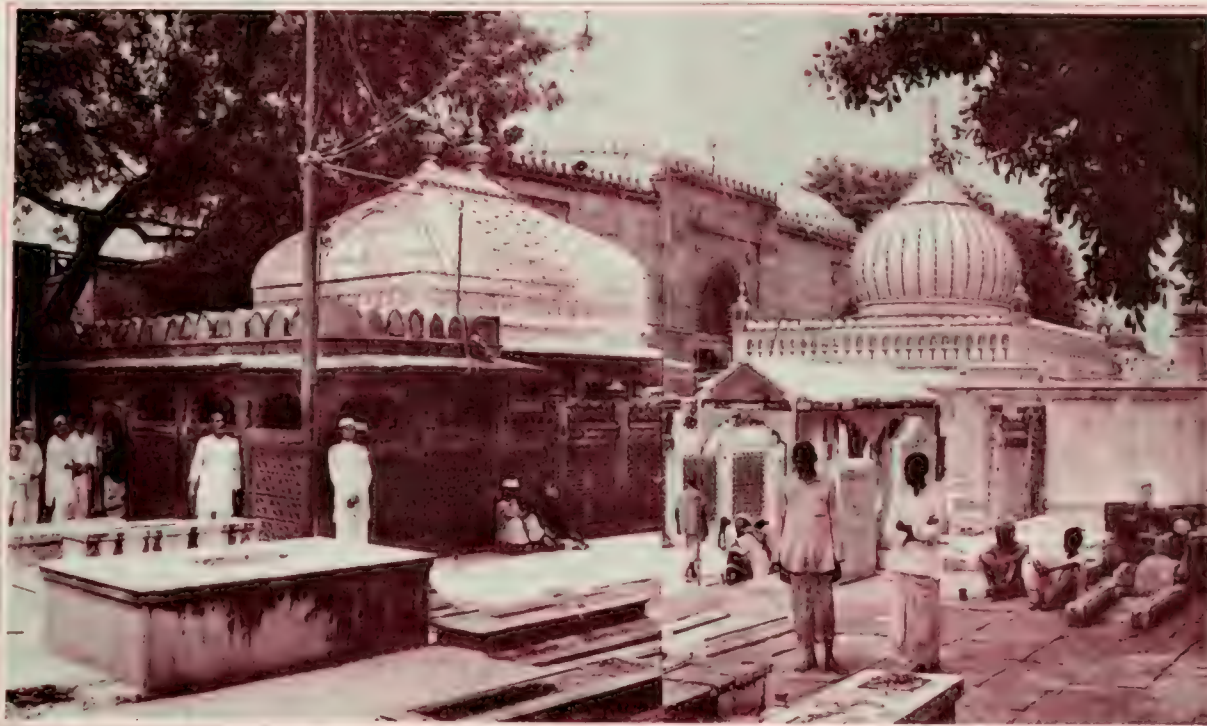
दिल्ली में अमीर ख़ुसरो का मज़ार, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के साये में

अपमान भी समझा। मुबारक शाह खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक दो ऐसे बादशाह थे जिन्होंने अकारण ही शेख से अपने सम्बन्ध बिगाड़ लिए। उन दिनों एक परम्परा-सी थी कि चाँद की हर पहली तारीख को दिल्ली के उलमा और सूफी सुलतान का अभिवादन करने दरबार जाया करते थे। परन्तु हज़रत निज़ामुद्दीन ऐसा कभी नहीं करते थे। मुबारक शाह ने धमकी दी कि यदि वह अगली बार दरबार में उपस्थित न हुए तो वह उन्हें हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ डलवा कर अपने दरबार में खींच बुलायेगा। किन्तु इससे पहले कि वह कोई ऐसी कार्रवाई कर पाता, परवारियों ने उसी की हत्या कर दी। ऐसे ही गयासुद्दीन तुगलक ने भी लखनौती से वापस आते हुए, शेख को सन्देश भिजवाया कि वह उसके पहुँचने से पहले ही दिल्ली छोड़कर चले जायें। जब शेख को यह संदेश मिला तो उन्होंने एक वाक्य कहा, जो अब प्रसिद्ध कहावत बन गया है—"हुनीज़ दिल्ली दूरअस्त" (दिल्ली अब भी बहुत दूर है) और अफगानपुर म बादशाह को जो कुछ भोगना पड़ा उसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है।

अमीर खुसरो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के बड़े चहीते मुरीद थे। शेख उनसे इतना प्रेम करते थे कि वह प्रायः कहा करते, "मैं हरेक से तंग आ जाता हूँ, यहाँ तक कि अपने आप से भी, लेकिन तुमसे कभी तंग नहीं आता।" अमीर खुसरो के प्रति शेख का प्रेम इतना अधिक था कि एक बार उन्होंने कहा कि अगर धर्म ने इसे निषिद्ध न कर दिया होता, तो वह अपनी इस कामना को अवश्य घोषित कर देते कि उन्हें और अमीर खुसरो को एक ही कब्र में दफन किया जाये। वह यह भी कहा करते थे कि वह अमीर खुसरो के बिना जन्नत में प्रवेश न कर पाएंगे और उस ज्योति के सम्मुख ईश्वरीय क्षमा चाहेंगे, जिससे इस तुर्क का सीना जगमगा रहा है। उन्होंने अमीर खुसरो का नाम 'तुर्कुल्लाह' रखा था और प्रायः इसी नाम से उन्हें पुकारा करते थे। केवल खुसरो को ही इशा (रात्रि) की नमाज के बाद शेख के एकान्तवास में उपस्थित होने की इजाज़त थी। हर रात इस समय वह अपने गुरु से दिल की बातें करते, उन्हें दिन भर के हालात से अवगत कराते और आने वाले दिन के

लिए उनसे प्रेरणा और शक्ति प्राप्त करते। उन्होंने शेख के कथनों व शिक्षाओं को पुस्तक-रूप में संकलित भी किया है, जिसका नाम 'अफ़जलुलफ़वाइद' है।

खुसरो केवल सैनिक, दरबारी, कवि और सूफी ही न थे, वह अपने युग के प्रख्यात संगीतज्ञ भी थे। उनकी आवाज बहुत ही मधुर और मोहक थी। वह संगीत कला में इतने प्रवीण थे कि कहा जाता है कि उन्होंने संगीत के एक मुकाबले में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट संगीतज्ञ नायक गोपाल को भी परास्त कर दिया था। केवल यही नहीं कि खुसरो अपने समय के महान गायक थे, बल्कि उन्होंने संगीत-क्षेत्र में बहुत से आविष्कार और अभिनव प्रयोग भी किये हैं। कहा जाता है कि **तबला** और **सितार** उन्हीं के आविष्कार हैं। क़ौल, तराना, ख्याल और मोहिला के साथ-साथ प्रसिद्ध राग ऐमन भी उन्हीं की प्रचुर प्रतिभा की देन है। इसी तरह धर्मानुरागी संगीत में कव्वाली उनका बहुत बड़ा योगदान है।

खुसरो द्रुत गति से परिवर्तित होने वाले युग में पैदा हुए थे। यह वह समय था, जब हर चीज रूप ग्रहण कर रही थी और दो महान संस्कृतियों का मिलन अभी प्रारंभ ही हुआ था। भारतीय मां और तुर्की बाप की औलाद—खुसरो का व्यक्तित्व दोनों संस्कृतियों के श्रेष्ठ गुणों का संगम था। उन्हें उस धरती से, जिसने उन्हें जन्म दिया था, अपार लगाव था और वे हर भारतीय वस्तु के बड़े प्रेमी और गुण-ग्राहक थे। उन्हें अपने भारतीय होने पर बड़ा गर्व था और उन्होंने एक रचना में उन बहुत सी बातों का उल्लेख किया है, जिनके कारण भारत देश संसार के दूसरे देशों से श्रेष्ठ है। यहां का ज्ञान-भंडार, शून्य का आविष्कार, पंचतन्त्र की कहानियां, शतरंज का खेल, भारत का मोहक संगीत, और इन सब से बढ़कर यह बात कि खुसरो जैसा कवि किसी और देश में नहीं—ये तमाम बातें स्पष्ट रूप से इस देश को महानतम बना देती हैं।

उन्होंने तुर्की या फारसी के बजाय **हिन्दवी** को सदैव अपनी मातृ-भाषा माना फिर भी उन्होंने हिन्दवी और फारसी में अपूर्व स्थान प्राप्त किया।

उन दिनों हिन्दवी वह मिली-जुली भाषा थी जो उत्तरी भारत के लोग बोल-चाल में इस्तेमाल करते थे। कहा जाता है कि वह इस भाषा के पहले कवि हैं और चूंकि हिन्दी और उर्दू दोनों ही हिन्दवी के परिष्कृत रूप हैं, उन्हें उचित रूप से उर्दू और हिन्दी का जनक कहा जा सकता है। उन्होंने हिन्दवी और फारसी के उपयोग में बड़े रोचक प्रयोग भी किये हैं। दुर्भाग्यवश उनकी हिन्दी रचनाओं का बड़ा भाग अब उपलब्ध नहीं है, फिर भी यह बात अपनी जगह सत्य है कि उन्होंने लोक-भाषा में अगणित दोहे, कहे-मुकरियाँ, गीत और पहेलियाँ लिखीं, जिन्हें लोग अब भी याद करते और दोहराते हैं।

प्रतिभा कभी-कभी जन्म लेती है और बहुमुखी प्रतिभाएँ तो और भी कम जन्म लेती हैं। खुसरो एक ऐसे ही प्रतिभावान व्यक्ति थे, जिनकी मिसाल मिलना कठिन है। उन जैसे व्यक्ति शताब्दियों में एक बार पैदा होते हैं, पर एक बार इस धरती पर आने के बाद वह युगों हमारे साथ रहते हैं। आज भी अमीर खुसरो हमें बहुत कुछ शिक्षाएँ दे सकते हैं। आज वे दरबारी के रूप में नहीं अपितु संत के रूप में जीवित हैं; वे केवल एक विद्वान के रूप में नहीं अपितु जनसामान्य के एक प्रिय व्यक्ति के रूप में, और इससे भी बढ़कर, इस देश की एक ऐसी मिली-जुली अनेकता में एकता वाली संस्कृति के उन्नायक के रूप में अमर हैं, जिसमें अनेक संस्कृतियों, भाषाओं और जीवन पद्धतियों में एकरूपता पाई जाती है।

लेखक : जाफर अब्बास

अमीर खुसरो की कृतियों की कुछ प्राचीन पांडुलिपियाँ

(व्याख्या सहित एक ग्रंथ-सूची)

सम्भवत: इस समय उपलब्ध अमीर खुसरो की सबसे प्राचीन पांडुलिपि ताशकंद के फारेन इन्स्टीट्यूट में है। इस पांडुलिपि का उल्लेख उनकी पांडुलिपियों की सूची के खण्ड II की क्रम सं. 1001/178 पर 'कुल्लियात' के नाम से हुआ है। इस पांडुलिपि में, जिसका कि मुख्य-पृष्ठ और पुष्पिका गायब है, 'गुर्रतुलकमाल' का लगभग संपूर्ण पाठान्तर शामिल है। 'मिफ्ताहुल फुतूह' और 'नवशनामा' (नवम्बर-दिसम्बर 1278) के अतिरिक्त, अन्य शैलियों की बहुत सी रचनाएं भी मिलती हैं। लेकिन उसमें गज़लें नहीं हैं। पांडुलिपि के साठ पृष्ठ के आमुख में गजल की, जो एक अति लोकप्रिय व्यवहृत कला-रूप है, विशेष चर्चा नहीं मिलती। इसका इस प्रकार तिरस्कार किया गया है जैसे कोई महत्वहीन और मुंह लगाने योग्य वस्तु ही न हो।

कुछ विद्वानों को इसमें संदेह है कि यह पांडुलिपि अमीर खुसरो के जीवन-काल ही में लिखी गयी होगी (या उनकी अपनी कलम से लिखी गयी होगी)। इसका कारण यह है कि उनकी बाद की अन्य सभी पांडुलिपियों में गजल हर दीवान का अंग है। इस पांडुलिपि का कागज-कलम मध्य एशियायी है, खुशखत की शैली 'मुल्स' और लिखावट चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ की जान पड़ती है। इस पांडुलिपि की कोई नकल ताशकन्द से बाहर नहीं गई है।

दूसरी अत्यन्त मूल्यवान पांडुलिपि 'खमसा-ए-अमीर खुसरो' की तीन मसनवियों पर आधारित है, जो मार्च-मई 1355 में लिखी गयी थी। पुष्पिका पर खुशनवीस का नाम मुहम्मद बिन मुहम्मद

ग्रौर उपाधि शम्सुल हाफिज़ शीराजी लिखी हुई है। इसमें सम्मिलित मसनवियाँ हैं 'शीरी-खुसरो', 'ग्राइना-ए-सिकन्दरी' ग्रौर 'हश्त-बहिश्त'। खुसरो की मृत्यु के तीस साल बाद, 1355 ई. में जबकि पांडुलिपि तैयार की गयी, हाफिज़ नव-युवक थे। ग्रब यह प्रमाणित हो गया है कि हाफिज़ ने खुसरो के दोहों को ही ग्रपने दोहों का ग्राधार बनाया है। यह भी संभव है कि हाफिज़ ने ग्रभ्यास के लिए या पारिश्रमिक प्राप्त करने के लिए खुसरो की रचनाग्रों की नकल की हो।

कुतुबखाना-ए-मुहम्मदी बाग दीवान साहेब मद्रास में 'खमसा पंच गंज' की एक पांडुलिपि है। यह ग्रब तक भारत में प्राप्त 'खमसा' की सबसे पुरानी प्रति है। प्रत्येक मसनवी का शीर्षक सुनहरे ग्रक्षरों में है ग्रौर उस पर सजावट का काफी काम है। पहली मसनवी का नाम शीर्षक में नहीं है। शेष ग्रन्य मसनवियों के नाम लिखे हैं, जो पृथक्-पृथक् डिजाइन में हैं। 'जादूल' (पृष्ठ के चारों ग्रोर की लकीर) शुरू से लेकर ग्रन्त तक सुनहरी है। इसके ग्रलावा प्रत्येक पेज के हाशिये पर कुछ शेर (पद) भी हैं, जिसके शुरू ग्रौर ग्राखिर में रंगीन ग्रौर सुनहरी फूल पत्तियाँ बनी हैं, जो एक दूसरे से पृथक् हैं।

खमसा' की एक दूसरी पांडुलिपि 1473 ई. की है। किसी समीइबन मुहम्मद रजा इस्फहानी की सुन्दर लेखनी से लिखी यह पांडुलिपि समरकन्द में प्राप्त हुई थी। मसनवी के द्विपदों को, जो धीरे धीरे बाद में प्रकाश में ग्राये, हाशियों पर लिख दिया गया है। इस पांडुलिपि का उल्लेख ग्रभी तक सूची में नहीं हो सका है।

भारत में दीवान-ए-ग्रमीर खुसरो की एक दूसरी काफी पुरानी पांडुलिपि विक्टोरिया मेमोरियल हाल, कलकत्ता में है। इसका समय 1481 ई. है।

इंडिया ग्राफिस लाइब्रेरी में उपलब्ध 'कुल्लियाते ग्रमीर खुसरो' (संख्या 1186) की पाँडुलिपि 1462 ई. में तैयार की गई। पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर चमकते ग्रक्षरों में यह लिखा है—"भारत के महानतम

फारसी कवि की काव्य रचनाओं का प्राचीनतम संग्रह।" अब तक इस पांडुलिपि की चार नकल बाहर गई है, जिनमें से एक लिटन लाइब्रेरी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी ने 1934 ई. में प्राप्त की थी। यह पांडुलिपि पाँच भागों में है और 'खमसा' के अतिरिक्त इसमें मसनवी 'मिफ्ताहुल फुतूह' भी सम्मिलित है, जो हाशिये पर अंकित है।

ताजकिस्तान स्थित दोशम्बे के ओरियन्टल इंस्टीटयूट ने 'खमसा' की एक सुन्दर सचित्र पांडुलिपि की खोज की है, जो हर दृष्टि से पूर्ण है। यह पांडुलिपि 1496 ई. में तैयार की गयी थी और अपने आरम्भिक लघु-चित्रों के कारण यह, इस रचना की अन्य पांडुलिपियों की अपेक्षा, अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। (संख्या एम 287/27109)

खमसा-ए-अमीर खुसरो की एक दूसरी भली भाँति रखी गई पांडुलिपि भी उपलब्ध है। इसका उल्लेख दोशम्बे के 'ओरिएन्टल मेनुस्क्रिप्ट्स की अनुलिपित सूची' के दूसरे भाग में क्रम संख्या 817 में है। यह पांडुलिपि जुलाई 1499 में तैयार की गयी थी।

आजरबाईजान, बाकू के एकेडेमी इंस्टीटयूट के पास भी एक ऐसी 'कुल्लियात' नामक पांडुलिपि है, जिसमें भी 'खमसा-ए-निजामी' शामिल है। अनुमान है कि यह पांडुलिपि 15वीं शताब्दी में किसी समय तैयार की गयी होगी।

आनिका की दो पांडुलिपियां भी मिलती हैं। आरम्भ और अन्त के कुछ पृष्ठों को छोड़कर पांडुलिपि अच्छी हालत में हैं। ताशकन्द में प्राप्त एक पांडुलिपि अगस्त 1498 में शाह कासिमुल कातिब ने तैयार की थी और जो क्रम संख्या 1020/7424 में अंकित है। एक दूसरी, दोशम्बे में प्राप्त पांडुलिपि, 16वीं शताब्दी के आरम्भ से संबंधित है। इसमें कुछ सचित्र पृष्ठ भी सम्मिलित हैं।

एक अन्य 'कुल्लियात' ब्रिटिश संग्रहालय में उपलब्ध है। इसका उल्लेख उनकी पांडुलिपियों की सूची में क्रम संख्या 1205 में है। यह 1516-17

में तैयार की गयी थी। 'निहायतुल कमाल' और 'तुगलकनामा' के अलावा इसमें खुसरो की तमाम रचनाएं सम्मिलित हैं। दीवानों (काव्य-संग्रह) को मुखपृष्ठ पर और मसनवियों को हाशिए पर बहुत ही सफाई और सावधानी के साथ दिया गया है।

अमीर खुसरो की चुनी हुई रचनाओं के 4 खण्ड इंडिया आफिस लाइब्रेरी में उपलब्ध हैं। ये रचनाएं तीन अलग-अलग पांडुलिपियों में हैं, जो सभी सुलिखित और भलीभाँति रखी हैं। इन पांडुलिपियों में से एक 1456 ई. में शाह महमूद के दरबार में तैयार की गयी। इस पर सर जेन्स फ्रेजर की मुहर लगी है। दूसरी पांडुलिपि 1492 ई. में और तीसरी—'खमसा' 1436 ई. में तैयार की गयी। इस अंतिम पांडुलिपि में हाशिए पर दो कविताएं हैं, जिनकी रचना सम्भवतः शाह शुजा ने अपने बुरे दिनों के दौरान की थी। कुल मिलाकर ये तीनों पांडुलिपियां, पश्चिम में, अमीर खुसरो की कृतियों का एक अत्यन्त मूल्यवान संग्रह हैं।

लेनिनग्राद की पब्लिक लाइब्रेरी में भी एक पांडुलिपि उपलब्ध है। इसे पूरी सावधानी के साथ सम्पादित और तैयार किया गया है। इसे हुसैन बाइकरा के प्रमुख अमीर सौफिया ने 1517 में हिरात में तैयार कराया। इस पांडुलिपि को 150 वर्ष पहले लाइब्रेरी ने प्राप्त किया था और उस समय से आठ प्रमुख लेखकों ने खुसरो पर अध्ययन करने के लिए इससे लाभ उठाया। इस पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर शाह अब्बास सफ़वी (हुमायूं और अकबर के समकालीन) के हस्ताक्षर से यह लिखा है—"इस पांडुलिपि को मैंने इमाम (इमाम रज़ा) के मकबरे पर अध्ययन के लिए रख छोड़ा है, जो कोई भी इसे चुरायेगा उसकी गणना हुसैन के हत्यारों में की जायेगी।"

कुल्लियात' की एक बड़ी सुन्दर पांडुलिपि पेरिस के 'बिबलियोथिका नेशनेल' में है। यह उनके सूचीपत्र में क्रम संख्या 1539 में अंकित है (परिशिष्ट संख्या 834)। यह अत्यन्त साफ-सुथरी और चमकदार पांडुलिपि है। इसके हर दीवान

का पहला पृष्ठ स्वर्णिम और नयनाभिराम है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रसिद्ध सुलेखकार (खुशनवीस) मीर अली मशहदी ने 1526 ई. में इसे बुखारा में तैयार किया था। प्रथम पृष्ठ पर पांडुलिपि के अंग्रेज ग्राहक (सम्भवतः इलियट) ने निम्न शब्द लिख दिये हैं—"सौन्दर्यप्रिय कवि की रचना की सुन्दरतम प्रतिलिपि....."। 'कुल्लियात' के अतिरिक्त 1487 ई. में सुलतान अली मशहदी की ही तैयार की हुई अमीर खुसरो और हसन देहलवी की कुछ दूसरी रचनाओं के कुछ अंशों की प्रतिलिपियाँ भी यहाँ मौजूद हैं।

आस्ताना-ए-कुद्स की लाइब्रेरी में, जो मशहद (ईरान) में है, चौथे दीवान 'वाकिया-नाकिया' की दो अति प्राचीन और प्रामाणिक पांडुलिपियां उपलब्ध हैं। 15वीं शताब्दी की युग-सन्धि में लिखी गयी यह दोनों पांडुलिपियाँ उस समय की परिष्कृत हिरात शैली के खुशखत के सर्वोत्कृष्ट नमूनों में से समझी जाती हैं। इन पांडुलिपियों की प्रमुख विशेषता पंक्तियों के मध्य सजावट का सुनहरा काम है। 16वीं शताब्दी की एक दूसरी पांडुलिपि भी यहां उपलब्ध है। कुछ त्रुटियों के बावजूद पांडुलिपि खुशखत शैली का ऐसा सुन्दर नमूना है कि इसकी एक प्रतिलिपि तैयार करना उपयोगी होगा।

तुर्की के टाप कापी संग्रहालय में रखी गई 'हश्त-बहिश्त' की पांडुलिपि इस दृष्टि से बेजोड़ है कि इसमें हिरात स्कूल के 23 अमूल्य चित्र हैं। कोई भी मसनवी इससे उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत नहीं की गयी है। 1496 ई. में तैयार की गयी पांडुलिपि सुलतान अली मशहदी की कला के दुर्लभ नमूनों में से एक है। इस जैसी दूसरी प्रति मिलना कठिन है।

पश्चिम बर्लिन की स्टेट लाइब्रेरी में 'खमसा' की अति मूल्यवान पांडुलिपि है, जो उनकी सूची में क्रम संख्या 830ए में अंकित है। यह पांडुलिपि स्वयं सम्राट शाहजहां ने तैयार की थी और हाशिये की टिप्पणियां काव्य के प्रति शाहजहां की परिष्कृत रुचि का आभास देती हैं। 'वसितुल

हयात' दीवान की एक पांडुलिपि भी, जिसको सन् 1669 में मुहम्मद मुराद् बिन शहरुप बेग बल्खी ने स्वयं अपने लिए तैयार कराया था, यहाँ उपलब्ध है।

मद्रास की साहेब बाग लाइब्रेरी में बीजापुर के इब्राहीन आदिल शाह के शासन-काल में तैयार की गयी 'खमसा' की एक पांडुलिपि मिली है। इसमें 'दकन स्कूल' के 15 उत्कृष्ट लघुचित्र भी है।

नेशनल म्युजियम (राष्ट्रीय संग्रहालय) दिल्ली में यद्यपि अमीर खुसरो की विभिन्न रचनाओं की 10 पांडुलिपियां हैं, पर उनमें उल्लेखनीय 'खमसा' और 'आशिका' की पांडुलिपियां हैं। इन पांडुलिपियों में कुछ चित्र अकबर-काल के हैं और कुछ ऐसे चित्र भी हैं जिनमें पूर्व-मुगल काल के चित्रों की विशेषताएं हैं।

रोम स्थित इटली की नेशनल लाइब्रेरी में हाल ही में 'हश्त-बहिश्त' की एक दुर्लभ पांडुलिपि मिली है।

अमीर खुसरो की रचनाओं की कुछ और पांडुलिपियां जो अधिकतर 16वीं और 17वीं शताब्दियों की हैं, बोडेलियन, कोपनहेगन, ब्रूसेल्स और डबलिन में भी उपलब्ध हैं। प्राचीनता और प्रामाणिकता की दृष्टि से इन्हें बाद की पांडुलिपियों के साथ रखा जा सकता है।

संकलन: डा. ज़ोये अन्सारी

अमीर खुसरो देहलवी राष्ट्रीय समारोह समिति

सातवें शताब्दी समारोह

मुख्य संरक्षक

श्री फखरुद्दीन अली अहमद

संरक्षक

श्री बी. डी. जत्ती   शेख मुहम्मद अब्दुल्ला

अध्यक्ष

श्री अली यावर जंग

उपाध्यक्ष

डा. कर्ण सिंह   श्री इन्द्र कुमार गुजराल
श्री डी. के. बरुआ   प्रोफेसर नूरुल हसन
श्री मुहम्मद यूनुस सलीम

महा सचिव

डा. जोये अन्सारी   श्री हसनुद्दीन अहमद

कोषाध्यक्ष

डा. वाइ. नजमुद्दीन

सदस्य

प्रोफेसर खलीक अहमद निजामी   डा. सैयद अमीर हसन आबिदी
डा. मसूद हुसैन   पीर जामिन निजामी
श्री अली सरदार जाफरी   श्री. टी. ए. वहीद
श्री के. सी. बृहस्पति   श्री अब्दुल हलीम जाफर खां
श्री प्रभाकर माचवे   श्री गुलाम रसूल नजकी
काजी अब्दुल वदूद   श्री यशपाल
डा. नजीर अहमद